

## प्रार्थना का महत्व तथा कर्म और भाग्य से सम्बन्ध

डॉ. मणिमाला शर्मा\*

### प्रस्तावना

भिखारी बनकर प्रार्थना नहीं की जा सकती, प्रभु बनकर प्रार्थना की जा सकती है। वैदिक साहित्य में कहा गया है – 'देवो भूत्वा यजेत।' देवता होकर देवता की पूजा करें। जो प्रभु नहीं होता, वह प्रभु की पूजा नहीं कर सकता प्रभु के लिये एक पद्य में कहा गया है 'जो सिद्ध चन्द्रमा की तरह निर्मल है, सूर्य से अधिक तेजस्वी है, की तरह गंभीर है, वे मुझे, सिद्धि दें'।

सिद्धि को प्राप्त करने का यह मंत्र है पर सिद्धि मागने से नहीं मिलती । सिद्धि पाने के लिये स्वयं को सिद्ध करना पड़ता है। जो व्यक्ति चन्द्रमा जैसी निर्मलता, सूर्य जैसी तेजस्विता और सागर जैसी गंभीरता को प्राप्त नहीं करता, उसे सिद्धि कभी नहीं मिल सकती। सिद्धि उसे मिलती है जो सिद्धदय बन जाता है। यह साधना का महत्वपूर्ण सूत्र तन्मयता, तन्मय बन जाना। जो स्वयं प्रभुमय नहीं बन सकता वह – प्रभु की प्रार्थना कैसे करेगा? प्रार्थना आत्मा की शक्ति है और वह तभी सफल होती है जब प्रार्थना करने वाला स्वयं प्रभुमय हो जाता है।

भगवान वही है जो भक्त को भगवान बना दे – भगवान और भक्त का अन्तर मिटा दे प्रार्थना और प्रभु का जो सम्बन्ध है वह यह है कि प्रभुमय बनने के बाद व्यक्ति में स्वयं में प्रभुता प्रकट होने लग जाती है।

प्रार्थना का सूत्र है – तन्मयता प्रभुमय होने की शक्ति का जागरण घ जब तक तन्मयता नहीं आती तब तक प्रभु से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अपने पुरषार्थ को प्रदीप्त करता है, प्रभुमय होने की शक्ति को जगाता है। उनकी प्रार्थना सफल हो जाती है। यदि ऐसा नहीं होता तो वर्षों प्रार्थना करते रहने पर भी कुछ नहीं होता। जब कि भवदमेज च्त्लमते तम वजिमद दूमतमक सच्ची प्रार्थना प्रायः स्वीकार करली जाती है प्रभु पूजा की प्रार्थना से अच्छा है कि व्यक्ति प्रभु की आज्ञा का पालन करे। वह लड़का पिता का प्रिय नहीं हो सकता जो पिता को प्रतिदिन नमस्कार तो करता है किन्तु पिता की आज्ञा नहीं मानता। पिता को वह पुत्र अच्छा लगता है जो आज्ञा का पालन करता है, अनुशासन में रहता है ।

जो प्रभु अनुशासन में चलता है, आज्ञा के अनुसार चलता है, वही वास्तव में प्रभु की प्रार्थना करने का अधिकारी हो सकता है। जो प्रभु के आदेशों को नहीं मानता, उसके विपरित आचरण करता है, वह प्रार्थना का अधिकारी नहीं हो सकता । प्रभु का आदेश है पवित्र रहो, किन्तु विचारों और आचरण से गंदा रहता है। प्रभु का आदेश है बुरे आचरण मत करें किन्तु आदमी बुरे आचरण करता है। बेईमानी में फंसा रहता है। वैसा आदमी प्रार्थना करने के योग्य नहीं है।

\* सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, रोहट, पाली, राजस्थान।

प्रार्थना केवल परम्परा का निर्वाह नहीं अपितु जागृत चित्त का संकल्प है। मास्तिष्क के तीन हिस्से होते हैं जागृत, दूसरा अर्द्ध-जागृत, तीसरा अजागृत। जब बालक पढ़ता है तब जागृत मस्तिष्क के हिस्से का उपयोग होता है। एकाग्रता की कमी से मन भटकता है। उस समय भाव क्रिया नहीं रह पाती जब भाव क्रिया होती है तब मन उसी क्रिया में तल्लीन हो जाता है। स्मृति और कल्पनाओं में डूबा मन अध्ययन नहीं करपाता। अध्ययन के लिए एकाग्रता और तल्लीनता आवश्यक है।

- प्रार्थना से बच्चे के जागृत, अर्द्धजागृत और जागृत मास्तिष्क के तीनों भागों तक उसकी पहुँच हो जाती है।
- एकाग्रता के कारण मन इधर – उधर नहीं भटकता।
- प्रार्थना से सर्पण का भाव आता है।
- वन्दना से विनय भाव प्रकट होता है।
- प्रार्थना सभा आयोजन में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।
- प्रार्थना का वाद्य यंत्रों के साथ अभ्यास।
- राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान, देश भक्ति गति के माध्यम से भावत्मक एकता प्रार्थना, ध्यान, मौन, आवश्यकता एवं महत्व की जानकारी।
- प्रार्थना सभा एवं मानवीय मूल्य।
- श्लोक पाठ, अनमोल वचन, प्रेरक प्रसंग
- दैनिक समाचार, सामान्य ज्ञान आयोजन।
- प्रार्थना स्थल पर आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों की जानकारी देना यथा वार्ता, सामुहिक गीत, सूचनाओं का प्रसारण प्रार्थना सभा कार्यक्रम को प्रभावी बनाने हेतु इन गतिविधियों का आयोजन भी किया जा सकता है।
  - स्वच्छ आदतों का निर्माण।
  - स्वस्थ परम्पराएँ।
  - प्रशंसा एवं प्रोत्साहन।
  - सामान्य निर्देश।
  - शारीरिक सफाई एवं निरीक्षण।

आयोजन निम्न प्रकार से करवाना :-

- प्रार्थना के लिये सिद्धासन ६ सुखासन में बैठना।
- सावधान की स्थिति में लाना।
- आँखें बन्द करना।

उक्त बातों की आवश्यकता निम्न कारणों से है।

- मूल्य आधारित शिक्षा को सुदृढ बनाने के लिये प्रार्थना एवं मौन प्रार्थना आवश्यक है।
- चंचल मन को स्थिर करने के लिये।
- अध्ययन – अध्यापन का वातावरण निर्माण करने के लिये।
- इन्द्रिय निग्रह हेतु।

### महत्व

बालकों को मानवीय मूल्यों एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण के लिये प्रार्थना एवं मौन – प्रार्थना महत्वपूर्ण है। इससे बाल मन में स्थिर तथा शान्ति आती है। हृदय भावों से भर जाता है। चिन्तन आख बन्द करके करना चाहिये क्योंकि आँखे का सम्बन्ध मास्तिष्क के साथ हो जाता है। चिन्तन से चेतना का एक विशेष केन्द्र जागृत हो जाता है। जब छात्र ध्यान के द्वारा मन को स्थिर एवं एकाग्र करना सीख जाता है तो मन की चंचलता छूटने लगती है। शिक्षा ग्रहण करते समय एकाग्रता आजाती है। छात्र अपने पाठ को अतिशीघ्र रूचि के साथ सीख लेता है। तथा याद कर लेते हैं। अतः विद्यालय में प्रार्थना, ध्यान, मौन अतिआवश्यक है।

प्रार्थना प्रातः हृदय खोलने की कुंजी है। यदि हृदय को प्रार्थना द्वारा न धोया जाये तो आत्मा मैली हो जाती है। इससे भी अधिक सत्य है कि चालमत दममके दवैचममबी इसलिए कहा गया है कि

“मौन प्रार्थनाएँ जल्दी पहुँचती है, ईश्वर तक।

क्योंकि, मुक्त होती है वे, शब्दों के बोझ से”।।

आध्यात्मिक दर्शन के नाम पर इस संसार में तीन धारणाएँ प्रचलित हैं। 1. भाग्यवाद 2. कर्मवाद 3. पराक्रमवाद। भाग्यवादी मनुष्य सब कुछ भाग्य के भरोसे मानते हैं। इसमें आदमी का अपना कुछ नहीं होता। वे कहते हैं कि श्‌होत वही जो राम रचि राखा, को कहूँ तर्क बड़ावही शाखा।” कर्मवादी भाग्य में विश्वास तो जरूर रखता है मगर उनका कहना है कि मिलता तो सब कुछ भाग्य से ही है मगर वह भाग्य भी मनुष्य द्वारा बनाया हुआ निजी ही है। वे भाग्य व कर्म में समन्वय करते हैं। तीसरा दृष्टिकोण प्रकृतिवादी अथवा नास्तिकों का है। जिनका कथन है कि सब कुछ प्रकृति के नियमों से होता है आप चाहें तो सफलता के अवसरों का लाभ उठाओं और उसे प्राप्त करो। वे कहते हैं कि प्रकृति ने तो आपको आम दे दिया अब आप पुरुषार्थ करो और आम खाओ।

पूर्वी संसार की जनता भाग्यवाद में विश्वास करती है। वहाँ एक उच्च स्तरीय शक्ति में विश्वास किया जाता है जिसे लोग भाग्य के नाम से पुकारते हैं। वे मनुष्यों के कार्य एवं परिणामों को पहिले से ही निर्धारित मानते हैं। उनके इच्छित काम स्वतन्त्र तथा आत्म निर्धारित नहीं होते। यहाँ तक कि एक भाग्यवादी पुरुष जो अपने आपको शतरंज का पासा मात्र समझता है, वह जब तीर्थ यात्रा करने भी जाता है तो कहता है कि वह तीर्थ यात्रा करने नहीं आया वह तो माता ने बुलाया है। अथवा यूँ कहते हैं कि ‘जो विधि राखेराम ता विधि रहिये।’ उनकी मान्यता के अनुसार सब कुछ विधिरचित प्रीडिसाइडेड (भाग्यनिर्णीत) है। आदमी के हाथ में कुछ नहीं है। जब भाग्य किसी व्यक्ति पर प्रसन्न हो जाता है तो उसे सारी सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। जब किसी पर क्रुद्ध होता है तो उसे कुचल डालता है, तथा उसके कठोर परिश्रम का फल भी नहीं देता। इसकी प्रसन्नता – अप्रसन्नता मनुष्य की बुद्धि से परे होती है, मनुष्य अपने बौद्धिक तथा नैतिक प्रयत्न से भाग्य को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। यह व्यक्तियों से पूर्ण आत्म समर्पण चाहता है। भाग्यवाद के अनुसार भाग्य के सामने पूर्ण समर्पण तथा सद भाग्य की मुस्कराहट तथा दुर्भाग्य के कष्टों को सह लेना, व्यक्ति का कर्तव्य है। यह इच्छा स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को खोखला कर देता है तथा नैतिकता की जड़ पर आघात करता है। यह गुण, दोष उत्तरादायित्व, पुरस्कार दण्ड इन सबको व्यर्थ कर देता है तथा ऐसी स्थिति में बौद्धिक निर्णय असम्भव हो जाता है। भाग्यवाद नैतिकता की जड़ों पर कुठाराघात करता है। इसने पूर्वी देशों की जनता में अपनी स्थिति के प्रति सन्तोष पैदा कर दिया है जिससे उनके भीतर उपक्रमण की भावना समाप्त – सी हो गई है। वे अपनी शक्तियों को एकत्रित नहीं कर सकते तथा अपनी स्थिति को सुधार नहीं सकते। मैं तो यहां तक कहूँगी कि भाग्यवाद मनुष्य द्वारा कुछ नया व अच्छा करने की भावना को ही समाप्त कर देता है। मानवीय सभ्यता व संस्कृति तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों का क्रम ही अवरुद्ध हो जाता है।

जैन मतावलम्बी कर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। जैसा करोगे वैसा भरोगे। सत् कर्मों से मनुष्य में पुण्य का संचय होता है तथा असत् कर्मों द्वारा पाप का संचय होता है। पुण्य उसे अच्छी और सुविधाजनक स्थितियाँ देता है। मनुष्य सत्-असत् कर्म स्वतन्त्रतापूर्वक करते हैं। जीव मात्र में स्वतन्त्र इच्छाशक्ति होती ही है

अतः हर जीव पुण्य-पाप का अर्जन स्वतन्त्रतापूर्वक करता है। यह जीव मात्र का अपना आत्म उपादान (योग्यता) है। इसी स्वतन्त्र एवं निजी योग्यता के द्वारा मनुष्य द्वारा तरह-तरह के परिस्थिति प्रेरित कार्य किये जाते हैं जो वर्तमान जीवन में सुख अथवा दुःख उत्पन्न करते हैं। आत्मा वर्तमान शरीर की मृत्यु के पश्चात् संचित कर्मों का भोग करने के लिये अपनी निजी योग्यता के अनुकूल शरीर धारण करती है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। वह स्वतन्त्रतापूर्वक धर्माधर्म का अर्जन करता है। ये अर्जित कर्म मनुष्य के कार्मण शरीर (कारण शरीर) में उपस्थित रहते हैं। जो उचित परिस्थितियाँ (समवाय) मिलने पर उदय में आते हैं अथवा प्रकट हो जाते हैं। जिसे लोग भाग्य कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने स्वतन्त्र कार्यों के परिणाम से नहीं बच सकता तथापि अपने पिछले असत् कार्यों के परिणामस्वरूप संचित होने वाले पाप को भविष्य में अपने सत्कर्मों द्वारा समाप्त कर सकता है। इसी प्रकार अपने सत्कर्मों द्वारा संचित गुणों पर भी मनुष्य भविष्य में असत् कर्म करके पानी फेर सकता है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य को बना या बिगाड़ सकता है। कर्म का सिद्धान्त इच्छा स्वातन्त्र्य पर आधारित है। कर्म सिद्धान्त भाग्यवाद नहीं है जैसा कि कभी-कभी लोग इसे समझ बैठते हैं। यह पुरुषार्थ में विश्वास करता है जो कि स्वतन्त्र ऐच्छिक कार्यों का परिणाम है। यह इस बात में विश्वास करता है कि मनुष्य अपने स्वतन्त्र कर्मों द्वारा दैव-शक्ति को व्यर्थ कर सकता है।

यह कर्म का सिद्धान्त न केवल मानवीय स्वतन्त्रता को पूर्णतः उजागर करता है बल्कि यह उनकी चेतन स्वतन्त्रता को भी संतुलित एवं नियन्त्रित करता रहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य उन पाप-पुण्यों के अधीन रहता है जो उसने अपने गत जीवन में संचित किये हैं। यह वर्तमान स्वतन्त्रता पर गत जीवन के पाप पुण्य का भार लादे रखता है।

प्रायः लोग समृद्धि की असमानता में अपनी निसहायता को भाग्य मान कर अपने आपको झुठलाते हैं। जैसे कि खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे। अथवा यूँ कहो कि 'मजबूरी को महात्मा गांधी (अहिंसा) का नमा देना।' समृद्धि की असमानताओं की यह व्याख्या अक्सर मनुष्य को जड़ करती रही है। इसकी अनेक तात्विक कठिनाइयों से कर्म का सिद्धान्त अशिक्षित तथा विचारहीन व्यक्तियों के लिये भाग्यवाद का प्रतीक बन जाता है और इसकी परिभाषा मानवीय स्वतन्त्रता के अर्गला के सिद्धान्त के रूप में होती है। अक्सर इसको नियतिवाद अथवा पूर्व निर्धारणवाद के साथ मिला दिया जाता है जो मनुष्य के स्वतन्त्र इच्छा से कार्य करने की प्रेरणा को ठेस पहुँचाता है। वह भ्रम नैतिकता की परिस्थितियों के सम्मुख निष्क्रिय समर्पण मानता है। यह विचार वास्तव में भारतीय दर्शन द्वारा प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त के विरुद्ध है। आरम्भ में इसका अभिप्राय नैतिक कार्य करण सिद्धान्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

अन्त में समन्वित दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा जा सकता है कि :-

“मंजिल को पाने के लिए कर्म तो खुद ही को करना पड़ेगा,  
खुदा ने तो लकीरे दी है, रंग तो हमीं को भरना पड़ेगा।”

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परमहंस स्वामी महेश्वरा आनंद, मानव में छिपी शक्ति, ISBN 3.85052.197.4
2. दासगुप्ता, सरेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास, खण्ड-ट
3. जॉनसन, डब्ल्यू.जे. (2009), हिन्दू धर्म का एक शब्दकोष, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ISBN 978.0.19.861025.0

